हरिवंश पुराण[1] में शिवतत्त्व

परम्परा से महापुराणों की संख्या अठारह मानी जाती है। परन्तु जब हम उनकी सूची को देखते हैं तो उसमें भेद पाया जाता है। आमतौर से महापुराणों की गिनती में या तो वायुपुराण को छोड़ दिया जाता है या शिवपुराण को। कुछ आधुनिक विद्वानों ने पुराण के लक्षणों को ध्यान में रखते हुए महापुराणों की संख्या बीस माना है। इन बीस में वायु और शिव के साथ-साथ हरिवंश को भी स्थान दिया है।

हरिवंश पुराण को कई बार पुराणों (अथवा उपपुराणों) की गिनती में ही सम्मिलित नहीं किया जाता क्योंकि इसे महाभारत का खिल भाग माना जाता है। खिल भाग होने के कारण इसे महाभारत का ही अंश माना जाता है। फलस्वरूप इसे पुराण की बजाय (महाभारत का) हरिवंशपर्व कहा जाता है। महाभारत आदिपर्व के अनुक्रमणिकावाले अध्याय में महाभारत को सौ पर्वोंवाला ग्रंथ बताया गया है। उसके अन्तिम तीन पर्व हरिवंश ग्रंथ में ही सम्मिलित हैं। यह बात अनुक्रमणिकावाले अध्याय में स्पष्टरूप से कही गयी है।

हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्।
विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा।।
भविष्यं पर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत्।
एतत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना।।

(महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 2/82-83)

जैसे वेदविहित सोमयाग उपनिषदों के बिना साङ्ग सम्पन्न नहीं होता, वैसे ही महाभारत का परायण भी हरिवंश के बिना पूर्ण नहीं होता। किन्तु हरिवंश का परायण गीता आदि की तरह स्वतंत्र रूप से भी किया जाता है। जैसे आमलोगों को यह ध्यान नहीं रहता कि गीता महाभारत का ही अंश है उसी प्रकार हरिवंश के बारे में भी लोग यही समझते हैं कि यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। समाज में इसे अलग से पढ़ने-सुनने की परम्परा होने के कारण ही हमें हरिवंश पर अलग से अध्याय बनाना पड़ा है।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण में भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की बड़ी ही स्पष्टता से व्याख्या हुई है। भगवान् विष्णु, श्रीकृष्ण तथा ब्रह्माजी जैसे लोगों के द्वारा भगवान् शिव को परमतत्त्व, ब्रह्म, जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय का कारण कहलवाया गया है। चूँकि यह पुराण मुख्यतया हरिके वंश (श्रीकृष्ण के वंश) से संबंध रखता है इसलिये इसमें साधारणतया भगवान् शिव-संबंधी वे ही प्रसंग आते हैं जिनमें श्रीकृष्ण की कोई भूमिका हो। फलस्वरूप हम यहाँपर शिव-संबंधी ज्यादातर भगवान् श्रीकृष्ण के ही कथनों का उल्लेख कर सकेंगे जिन्हें उन्होंने अलग-अलग अवसरों पर व्यक्त किया है।

---

1. प्रस्तुत निबंध गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'महाभारत-खिलभाग हरिवंश' (श्रीहरिवंश पुराण) पर आधारित है।

पारिजात वृक्ष को लाने के लिये श्रीकृष्ण का अमरावती पर आक्रमण करने के निश्चय को जानकर कश्यपजी ने[1] युद्ध की शान्ति के लिये भगवान् शंकर से प्रार्थना की। वे अपनी स्तुति में भगवान् शिव को विष्णुरूप से अवतार लेनेवाले, सबके ईश्वर, जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले, देवताओं के अधिपति, अभीष्ट मनोरथों को पूरा करनेवाले, सर्वस्वरूप, योगियों के चिन्मय धाम, पापहर्त्ता, सर्वव्यापी, सुदर्शन, अजेय, अथर्ववेद द्वारा प्रतिपादित, पंचकोशरूप पाँच मस्तकों से युक्त, जगत् के कारण, वीर, दानवों के बाधक, हविष्यस्वरूप, विश्वात्मा, शरणागतों के लिये सुख को प्रकाशित करनेवाले, स्तवन के योग्य, सहस्रनेत्र तथा जिन्हें पाने के लिये सैकड़ों मार्ग हैं(अथवा जो शतपथ विहित कर्मफल के दाता हैं), पापशून्य, कल्याणकारी, सम्पूर्ण भूतों के अधिपति, अकेले ही संपूर्ण विश्व का भार वहन करनेवाले, इन्द्रियों के नियन्ता, मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करनेवाले, शीघ्र फल देनेवाले, रागादि दोषों को शान्त करनेवाले, त्रिशूलधारी, अनन्तवीर्य, सभी कर्मों एवं उनके फलों के साक्षी, हविष्यभोक्ता अग्निरूप, गुणों से परे(अर्थात् निर्गुण), विशुद्ध आत्मस्वरूप, दुराचारियों को मोह में डालनेवाले, प्रणवरूप, ओंकार की अर्द्धमात्रा, धनुर्वेद एवं अस्त्रविज्ञान के ज्ञाता, पशुपति, सबके एकमात्र मित्र, भूत एवं भविष्य जिनका रूप है, प्राणों के भी प्राण, एक होकर भी सम्पूर्ण विश्व में प्रविष्ट, विद्वान्, ब्रह्मवेत्ता होने के कारण छः गुणों(ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म) से परिपूर्ण, अनेकरूपधारी, कामादि शत्रु के नाशक, अतीन्द्रिय विषयों का भी ज्ञान करानेवाले, अजन्मा, गजचर्म धारण करनेवाले, त्रिनेत्र, देवाधिदेव, विप्रों को धर्म का उपदेश देनेवाले, तीनों लोकों के ईश्वर, जटा-जूटधारी, ॐकार नामवाले, साधनशील पुरुषों के लिये अपरोक्ष, श्रद्धा के अनुरूप वृत्ति(ज्ञान वा भक्ति) प्रदान करनेवाले, सर्वज्ञता आदि छः गुणों की पूर्त्ति करनेवाले, त्रिपुरारी, दक्षयज्ञविध्वंसक आदि-आदि कहा है(हरिवंश पुराण, विष्णुपर्व, अध्याय 72/29-60)। स्तुति के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

उरुक्रमं विश्वकर्माणमीशं जगत्स्रष्टारं धर्मदृश्यं वरेशम्।
सं सर्वं त्वां धृतिमद्धाम दिव्यं विश्वेश्वरं भगवन्तं नमस्ये।।

अर्थात्-जो विष्णुरूप से वामन-अवतार के समय महान् पग को बढ़ाकर त्रिलोकी को नाप लेने में समर्थ हुए, यह सम्पूर्ण विश्व जिनका कर्म है, जो सबके ईश्वर हैं, जगत् की सृष्टि करनेवाले हैं, धर्म के द्वारा जिनका साक्षात्कार होता है, जो अभीष्ट मनोरथों के स्वामी तथा उनकी पूर्ति करनेवाले हैं, जो सर्वस्वरूप, सात्त्विकी धृतिवाले योगियों के जो ये चिन्मय धामस्वरूप हैं, उन दिव्यस्वरूप आप

1. कश्यपजी अदिति के पति तथा इन्द्र के पिता थे। अदिति ने विष्णुजी से अपने जैसा पुत्र पाने का वरदान भी पाया था। अर्थात् स्वयं विष्णु ने भी अदिति से उत्पन्न हो अवतार धारण किया था। कश्यप-अदिति के पुत्र होने के नाते इन्द्र और विष्णु दोनों भाई ठहरे-इन्द्र बड़े तथा विष्णु छोटे। अतः दोनों पुत्रों के युद्ध को रोकने के लिये ही कश्यपजी ने शिव से स्तुति की थी।

भगवान् विश्वेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 72/29)

अन्तर्बहिर्वृजिनानां निहन्ता स्वयं कर्ता भूतभावी विकुर्वन्।
धृतायुधः सुकृतिनामुत्तमौजाः प्रणुद्यान्मे वृजिनं देवदेवः।।

अर्थात्-जो बाहर-भीतर के पाप-तापों का नाश करनेवाले हैं तथा स्वयं ही जगत् के कर्त्ता हैं, पंच भूतों के आकार में अपने-आपको प्रकट करना जिनका स्वभाव है अर्थात् जो स्वयं ही जगत् का उपादान कारण बनते हैं और आयुध धारण करके क्रोधादि विकारों को प्रकट करते हैं, जिनका ओज(बल-पराक्रम) सबसे उत्तम है तथा जो देवताओं के भी देवता हैं, वे परमेश्वर शिव पुण्यात्मा पुरुषों का तथा मेरा भी पाप-ताप दूर करें।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 72/53)

गुणत्रैकाल्यं यस्य देवस्य नित्यं सत्त्वोद्रेको यस्य भावात् प्रसूतः।
गोप्ता गोप्तृऋृणां सन्नदो दुष्कृतीनामाद्यो विश्वस्य बाधमानस्य क्रुद्धः।।

अर्थात्-जिन परमात्मा के गुण भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में सदा बने रहते हैं अथवा जिनमें सृष्टि, पालन और संहार कालसंबंधी गुण प्रवाहरूप से नित्य बने रहते हैं; जिनमें सत्त्वगुण की अधिकता है अर्थात् जो विष्णुरूप से स्थित हैं, जिनके स्वरूप से प्रकट हुए श्रीकृष्ण, इन्द्र आदि रक्षकों के भी रक्षक हैं, जो काल रुद्र बनकर दुराचारियों को विनाश का कष्ट प्रदान करनेवाले हैं और विश्व के आदि कारण(एवं माता-पिता के समान पालक) होकर भी जो इस जगत् को पीड़ा देनेवाले लोगों पर कुपित हो उनका विनाश कर डालते हैं, वे परमात्मा मेरी रक्षा करें।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 72/57)

यल्लिङ्गाङ्कं त्र्यम्बकः सर्वमीशो भगलिङ्गाङ्कं यद्धयुमा सर्वधात्री।
नान्यत् तृतीयं जगतीहास्ति किंचिन्महादेवात् सर्वसर्वेश्वरोऽसौ।।

अर्थात्-संसार में लिंग(पुरुषत्वसूचक चिन्ह) से अंकित जो भी शरीर-समुदाय है, वह सब त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर का स्वरूप है और भग(स्त्रीत्वसूचक) चिन्ह से चिन्हित जो शरीर-समूह है, वह सब सर्वजननी भगवती उमा का प्रतीक है। इस जगत् में इन दो के सिवा तीसरी कोई वस्तु नहीं है। महादेवजी(और उमा) से भिन्न कुछ नहीं है; वे ही सर्वसर्वेश्वर हैं(वे हमारी रक्षा करें)।(हरि. पु, वि. प., अध्याय 72/60)

पारिजात के लिये इन्द्र से होनेवाले युद्ध के विरामकाल(रात्रि) में पारियात्र पर्वत पर श्रीकृष्ण ने गंगाजल और बिल्व पर रुद्रदेव का आवाहन किया। आवाहन करने पर पार्वती सहित महादेवजी प्रमथ गणों के साथ वहाँ आये और गंगाजल तथा बेल के ऊपर खड़े हो गये। तब श्रीकृष्ण ने उनका पारिजात के फूलों द्वारा पूजन कर स्तवन किया।

वे अपनी स्तुति में उन्हें जन्म-मरणरूप संसार का द्रावण(निवारण) करनेवाले, सभी देवों से श्रेष्ठ, पशुपति, जगदीश्वर, अव्यक्त, अविनाशी, परमेश्वर, जगत् के कारण, विश्वनिर्माता, देवातिदेव,

ब्रह्मादि देवेश्वरों के भी स्वामी, अप्रमेयस्वरूप, बारंबार लोकों को उत्पन्न करनेवाले, त्र्यम्बक(तीनों लोकों के आश्रय), अमित कीर्तिवाले, संहारकारी, सुख-शान्ति प्रदान करनेवाले, कल्याणकारी, सर्वनाथ, नीलकण्ठ तथा दिव्य चिन्मय विग्रहधारी आदि-आदि कहा है(हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/22-34)। स्तुति के कुछ अंशों को हम देखें -

यस्मादीशो महतामीश्वराणां भवानाद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च।
तस्माद्धि त्वामीश्वरं प्राहुरीशं संतो विद्वांसः सर्वशास्त्रार्थतज्ज्ञाः।।

अर्थात्-आप बड़े-बड़े ईश्वर-कोटि के पुरुषों के भी ईश्वर हैं। आप ही आदिपुरुष, प्रीतिदाता तथा प्राणदाता हैं; इसीलिये सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थतत्त्व को जाननेवाले विद्वान् साधुपुरुष आपको ईश्वर तथा ईश कहते हैं।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/24)

पूज्यो देवैः पूज्यसे नित्यदा वै शश्वच्छ्रेयःकाङ्क्षिभिर्वरदामेयवीर्य।
तस्माद् विख्यातो भगवान् देवदेवः सतामिष्टः सर्वभूतात्मभावी।।

अर्थात्-अमेय बल-पराक्रम से सम्पन्न वरदायक महेश्वर! सदा कल्याण-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले देवता आप पूजनीय परमेश्वर की नित्य पूजा करते हैं; अतः आप 'भगवान् देवदेव'(देवताओं के भी देवता) के रूप में विख्यात हैं। सत्पुरुषों के इष्टदेव आप ही हैं। आप समस्त भूतों को अपने भीतर ही उत्पन्न करनेवाले हैं।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/27)

शर्वः शत्रूणां शासनादप्रमेयस्तथा भूयः शासनाच्चेश्वरेण।
सर्वव्यापित्वाच्छङ्करत्वाच्च सद्भिः शब्दस्येशानः श्रीकरार्काग्र्यतेजाः।।

अर्थात्-आप संहारकारी होने के कारण शर्व कहलाते हैं, समस्त शत्रुओं का शासन करने के कारण अप्रमेय शक्ति से सम्पन्न हैं; फिर ईश्वररूप से समस्त जगत् का शासन करने के कारण भी आप अप्रमेय हैं, सर्वव्यापी तथा सत्पुरुषों के लिये कल्याणकारी होने से भी आपको अप्रमेय कहा गया है, श्री(लक्ष्मी) की प्राप्ति करानेवाले परमेश्वर! आप सम्पूर्ण शब्दों के भी ईश्वर हैं अर्थात् समस्त शब्दों द्वारा आपका ही प्रतिपादन होता है। आपका उत्तम तेज सूर्य से भी बढ़कर है।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/29)

अहं ब्रह्मा कपिलो योऽप्यनन्तः पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः।
त्वत्तः सर्वे देवदेव प्रसूता एवं सर्वेशः कारणात्मा त्वमीड्यः।।

अर्थात-मैं, ब्रह्मा, कपिल, शेषनाग और आन्तरिक शत्रुओं पर विजय पाने के कारण अत्यन्त वीर(सनकादि) सभी ब्रह्मपुत्र-ये सब-के-सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार आप सबके ईश्वर और कारणरूप होने के कारण स्तुति के योग्य हैं।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/34)

यल्लिङ्गाङ्कं यच्च लोके भगाङ्कं सर्वं सोम त्वं स्थावरं जङ्गमं च।
प्राहुर्विप्रास्त्वां गुणिनं तत्त्वविज्ञास्तथा ध्येयामम्बिकां लोकधात्रीम्।।

अर्थात्-उमा सहित महेश्वर! संसार में सब कुछ लिंग और भग के चिन्ह से ही अंकित है, अत: यह समस्त चराचर जगत् आप दोनों का ही स्वरूप है। तत्त्वज्ञ ब्राह्मण आपको गुणवान् और ध्येयस्वरूपा लोकजननी अम्बिका को त्रिगुणरूपा कहते हैं।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/32)

षट्पुर के असुरों को ब्रह्माजी शिव के बारे में बताते हुए शिव को संपूर्ण जगत् का कर्त्ता और संहर्त्ता कहा है। उमा सहित महेश्वरदेव आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं।(हरि. पु, वि. प., अध्याय 82/13-14)

दक्ष-यज्ञ-विध्वंस के समय विष्णु एवं भगवान् शिव परस्पर एक दूसरे के प्रहार से अप्रभावित रहे। तदनन्तर विष्णुजी अपनी भूल पहचान कर भगवान् शिव से बोले-'अनादि अनन्त देवता रुद्र मेरा अपराध क्षमा करें; क्योंकि मैं यह जान गया कि आप सम्पूर्ण भूतों और आगमों के आचार्य हैं। कर्म जड़ हैं, अत: वे आप चिन्मय परमात्मा को प्रकाशित नहीं कर सकते'(अर्थात् भगवान् शिव द्वारा सगुण होकर लीला करनेवाले कर्म को देखकर लोग भ्रमित हो जाते हैं क्योंकि उन लौकिक कर्मों को देखकर कोई उनके परमतत्त्वरूप तक नहीं पहुँच पाते।) भगवान् शिव ही सर्वात्मा होने के कारण कर्मों के कर्त्ता और विकर्ता हैं। वे भूतों के शेष(अंग) नहीं शेषी(अंगी) हैं, इसलिये समस्त प्राणियों में उत्तम हैं।

अनादिनिधनो देवो क्षमतां हि भवान्मम।
सर्वभूतागमाचार्यमचलत्वाच्च कर्मणाम्।।
कर्मणां चैव कर्ता च विकर्ता चैव भारत।
अशेषत्वाच्च भूतानां सर्वभूतेषु चोत्तमः।।

(हरि. पु., भविष्यपर्व, अध्याय 32/49-50)

भगवान् कृष्ण रुक्मिणी से भगवान् शिवसम्बन्धी तपस्या की योजना बनाते समय शिव के गुणों का अनायास ही वर्णन कर उठते हैं। वहाँपर उन्होंने शिव को नीललोहित, प्राणियों के हित में तत्पर रहनेवाला, सबके उत्पादक, अविनाशी, अजन्मा, सर्वव्यापी, आदिदेव तथा विरूपाक्ष कहा है।(हरि. पु, भविष्य. पर्व., अध्याय 73/36-37)

भगवान् शिव से पुत्रप्राप्ति के लिये तपस्या करते हुए श्रीकृष्ण के पास भगवान् शिव के पहुँचने का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सर्वसमर्थ ईश्वर भगवान् शिव सिर पर जटा धारण किये भूतों एवं पिशाचों से घिरे हुए थे, धनुष-बाण और खड्ग से युक्त थे। उनके मस्तक पर अर्धचन्द्र शोभा दे रहा था। एक हाथ में कुश सहित कमण्डलु धारण किये, दूसरे हाथ में जलती मशाल लिये, तीसरे हाथ में विशाल डमरू धारण किये और चौथे हाथ में त्रिशूल लिये, गले में रुद्राक्ष की मालाएँ धारण किये, कुछ-कुछ पिंगल एवं ताम्रवर्ण के शरीरवाले, जटाओं से सुशोभित कल्याणकारी भगवान् चन्द्रशेखर श्वेत वृषभ से संयुक्त हो शोभा पा रहे थे। उनके मुख पर भस्मस्वरूप अंगराग लगा हुआ था। बड़े-बड़े सर्पों से उनकी जटाएँ बँधी हुई थीं। उनका मस्तक गंगाजी के जल से प्रक्षालित होता

था। नरमुण्डों की माला से सुशोभित वे सनातन शिव भगवान् कृष्ण के पास गये। जिन्हें सांख्यदर्शी विद्वान् श्रेष्ठ, महान् एवं पुरातन पुरुष कहते हैं, जिन महादेवजी के समस्त गुणों को ही एक श्रेणी के विद्वान् चौबीस तत्त्व कहते हैं, जिन्हें सम्पूर्ण भूतों का तत्त्वज्ञ कहा जाता है, जिन्हें शिवभक्त अप्रमेय, आधाररहित, नग्न, विश्वेश्वर, शान्तस्वरूप, आदि एवं सनातन शिव कहते हैं, जिनके ये पृथ्वी आदि तत्त्व मूर्ति हैं तथा पृथ्वी सहित जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान और प्रकृति जिनके आठ विग्रह हैं, वे महादेव आदिकर्त्ता, महाभर्त्ता तथा महायोगी श्रीकृष्ण के पास आये।(हरि. पु., भविष्यपर्व, अध्याय 85/10-22)

उपरोक्त वर्णन से भगवान् शिव के सगुण-साकार विग्रह का विस्तार से पता चलता है। साथ ही उनके निर्गुण होने का भी संकेत प्राप्त होता है।

आगे भगवान् शिव को लोकों की उत्पत्ति का कारण, सर्वव्यापी, प्रणवस्वरूप, जटाधारी एवं कृतकृत्य कहा गया है।

स सर्वलोकप्रभवो भवो विभुर्जटी च साक्षात् प्रणवात्मकः कृती।

(हरि. पु., भविष्यपर्व., अध्याय 86/18)

उपरोक्त रूपवाले पापहारी एवं ईश्वर भगवान् शिव को उपस्थित देखकर श्रीकृष्णजी ने उनकी स्तुति की जिसमें उन्होंने भगवान् शिव को नीलकण्ठ, शितिकण्ठ, जगत्स्त्रष्टा, परोपकारी, विश्वरूप, अमूर्त, पिनाकधारी, कल्याणरूप, दुष्टों का दमन करनेवाले, शान्तस्वरूप, हरिहरस्वरूप, अघोर, घोर तथा घोराघोर प्रिय, सर्वबीज, परम पवित्र, अष्टमूर्तिधारी, पिनाक, शूल एवं खड्ग धारण करनेवाले, खट्वांग तथा गजचर्म धारण करनेवाले, देवों के देव, आकाशस्वरूप, हरिरूपधारी, भक्तों के प्रिय तथा उन्हें वर देनेवाले, विश्वरूप धारण करनेवाले, प्रधान देवता, संपूर्ण भूतों के अधिपति, अजन्मा, कैलासवासी, आदि देवता, जगत्स्वरूप, सुन्दर रूपवाले, नग्न, सबके आश्रय, सर्वात्मा, ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, सर्वभूतेश्वर तथा भक्तवत्सल आदि-आदि कहा है।(हरि. पु. भविष्यपर्व 87/13-38)

नमः सर्वात्मने तुभ्यं नमस्ते भूतिदायक।
नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः।। (हरि. पु., भविष्यपर्व., अध्याय 87/35)

अर्थात्-आप सर्वात्मा को नमस्कार है। ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले रुद्रदेव! आपको नमस्कार है। आप वामदेव हैं, आपको नमस्कार है। आप महादेव हैं, आपको नमस्कार है।

ऊपर के चुने हुए उद्धरणों में वर्णित तत्त्वों से भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों पर प्रकाश पड़ता है। निर्गुणरूप में वे परमतत्त्व, ब्रह्म, अमूर्त, प्रणवस्वरूप, योगियों के ध्येय तथा आत्मस्वरूप आदि हैं। सगुणरूप में वे सर्वेश्वर, बह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप, विश्वरूप, अनन्त, अनादि, अजन्मा, सृष्टि का कर्त्ता, पालन एवं संहारकर्त्ता, परमात्मा, देवताओं के अधिपति, यज्ञ एवं वेदस्वरूप, कर्मफलदाता, काम एवं त्रिपुर आदि राक्षसों के हन्ता, पाँच मुखवाले, जटाधारी, गंगा,

चन्द्रमा, त्रिशूल, गजचर्म आदि को धारण करनेवाले, नीलकण्ठ, सभी शास्त्रों एवं अस्त्रों के ज्ञाता, चराचर-गुरु, अनेक रूपधारी, दयालु, कल्याणकारी, भक्तवत्सल, वरदाता, सबके उपास्य, सुदर्शन, सुख देनेवाले, पापों का नाश करनेवाले, काम एवं रागादि दोषों को दूर करनेवाले, मुक्तिदाता, भक्तों को श्रद्धा के अनुरूप वृत्ति(ज्ञान अथवा भक्ति) प्रदान करनेवाले, अष्टमूर्तिरूप, माया या प्रकृति के स्वामी, उमापति, पशुपति तथा भूतपति आदि-आदि हैं।

ऊपर के उद्धरण ब्रह्मा, विष्णु, श्रीकृष्ण तथा कश्यप आदि के वचनों पर आधारित होने के कारण प्रामाणिक माने जाने चाहिये। उनके वचनों की सत्यता को स्वीकार कर लेने पर शिवजी परमतत्त्व या परमब्रह्म सिद्ध होते हैं।

शिवोपासना

भगवान् शिव सर्वोच्च देव अथवा ब्रह्म हैं अत: व्यक्ति को उनकी उपासना अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि सर्वोच्च देव की उपासना से सभी देवों की उपासना स्वत: ही हो जाती है। इस पुराण में एक स्थल पर भगवान् शिव ऋषियों को कृष्णतत्त्व का उपदेश करते समय कहते हैं कि "ब्राह्मणों! तुम सम्पूर्ण यत्न से मेरा चिन्तन करके फिर केशव का ज्ञान प्राप्त करो। इन उपास्यदेव श्रीहरि में सदा मैं ही उपास्य माना गया हूँ।"

ध्यात्वा मां सर्वयत्नेन ततो जानीत केशवम्।
उपास्योऽहं सदा विप्रा उपास्येऽस्मिन् हरौ स्मृतः।। (हरि. पु. भविष्यपर्व 89/14)

यहाँ भाव यह है कि कृष्ण आदि देवों की उपासना करनेवाले भी भगवान् शिव की परोक्षरूप से उपासना करते हैं। चूँकि भगवान् शिव सर्वदेवमय हैं, अर्थात् सभी देव उन्हीं के अपररूप हैं, इसलिये शिव की पूजा से सभी देव प्रसन्न हो जाते हैं। अत: शिव की परोक्षपूजा से प्रत्यक्षपूजा बेहतर है।

पुन: भगवान् शिव की ऐसी विशेषतायें हैं जिनसे उनकी भक्ति का आकर्षण अत्यधिक हो जाता है। जैसे उन्हें अत्यन्त उदार(विष्णुपर्व 74/25), वरदायक(विष्णुप. 74/27, भविष्यपर्व 87/29 आदि), कल्याणकारी(वि. प. 74/29, 72/36, 44; भवि. प. 87/15, 32), भक्तजनों को सुख-शान्ति प्रदान करनेवाले(वि. प. 74/30, 72/36), अभीष्ट मनोरथों के स्वामी(वि. प. 72/29), पापहर्त्ता(वि. प. 72/30), प्रीति एवं सुख प्रकाशित करनेवाले(वि. प. 72/34), शीघ्रफल देनेवाले(वि. प. 72/37), सबके एकमात्र मित्र एवं कामादि शत्रुओं के नाशक(वि. प. 72/41 और 43), यज्ञ करनेवाले को अभीष्ट फल देनेवाले(वि. प. 72 /45), संसार वृक्ष का उच्छेदन करनेवाले(वि. प. 72/46), बाहर-भीतर के पापों एवं तापों के नाशक(वि. प. 72/53), श्रद्धालुओं को उनकी श्रद्धा के अनुरूप वृत्ति(ज्ञान अथवा भक्ति) देनेवाले(वि. प. 72/52), प्राणियों के हित में तत्पर(भविष्यपर्व 73/ 36), लोकहितैषी(भ. प. 85/9), भक्तप्रिय तथा भक्तों को वर

देनेवाले(भ. प. 87/22 तथा 38), वरणीय देवता(भ. प. 87/29), ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले(भ. प. 87/35) तथा भक्तों से प्रेम करनेवाले(भ. प. 87/38) इत्यादि कहा गया है। कल्याण-प्राप्ति की इच्छावाले देवगण शिवजी की नित्य पूजा करते हैं(वि. प. 74/27)। जो व्यक्ति किसी तिरस्कार आदि से पीड़ित हो एकमात्र शिव को आश्रय जानकर उनकी शरण लेता है, उसे शिव से धैर्य, ऐश्वर्य आदि अनुग्रह की प्राप्ति होती है तथा उन्हीं से गुह्य वस्तुओं का उपदेश भी प्राप्त होता है।(वि. प. 72/59)

भगवान् शिव की भक्ति से देव, दानव एवं मानव आदि सभी ने इच्छित फल पाये हैं। उदाहरण के लिये बाणासुर ने गणपति का (हरि. पु. वि. प. अध्याय 126) तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने पुत्र आदि का(ह. पु. वि. प. 74 तथा भविष्य पर्व अध्याय 87-88)।

परिजात लाने के लिये अमरावती पर आक्रमण के दौरान श्रीकृष्ण ने पारियात्र पर्वत पर शिव की स्तुति की थी(वि. प. 74/22-34)। इस स्तुति को सुनकर भगवान् शिव कृष्णजी से कहते हैं कि तुम्हें अभीष्ट मनोरथों की प्राप्ति होगी। तुम परिजात को अवश्य ले जाओगे। पुनः उन्होंने कहा कि "मैंने जो तुमसे कहा था कि तुम अवध्य, अजेय तथा मुझसे भी बढ़कर शूरवीर होओगे, वह बात उसी रूप में सत्य होगी उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता।"

अवध्यस्त्वमजेयश्च मत्तः शूरतरस्तथा।
भवितासीत्यवोचं यत् तत् तथा न तदन्यथा।। (ह. पु. वि. प. 74/38)

इसके बाद भगवान् शिव कहते हैं कि विष्णो! जो भक्तिभाव से तुम्हारे द्वारा की हुई इस स्तुति के द्वारा मेरा स्तवन करेगा, वह समरभूमि में विजय तथा उत्तम सम्मान पाकर धर्म का भागी होगा। तुमने जो मेरी यहाँ(गंगाजल तथा बिल्व पर) स्थापना की है, उसके अनुसार मैं बिल्वोदकेश्वर नाम से विख्यात होऊँगा। यहाँ की हुई याचना मेरे द्वारा अवश्य सफल होगी। जो यहाँ उपवासपूर्वक रहकर मुझमें भक्तिभाव रखते हुए तीन रात उपवास करेगा, वह मनोवांछित लोकों में जायेगा। इस प्रदेश में अविन्ध्या नाम से प्रसिद्ध गंगा प्रवाहित होगी जो साक्षात् गंगा के समान फलवती होगी।(ह. पु. वि. प. 74/39-42)

भगवान् श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी की पुत्रप्राप्ति संबन्धी याचना पर कैलास जाकर तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न कर पुत्रप्राप्ति का वरदान पाया। मानव-शरीरधारी श्रीकृष्ण ने सिर पर जटा और शरीर में चीर वस्त्र धारण कर बारह वर्षों[1] तक तपस्या करने का विचार किया था। वे शाक खाकर रहते, जप करते तथा वेदाध्ययन में तत्पर रहते। उनके लिये गरुड़जी हवन के लिये समिधाएँ जुटाते, सुदर्शन चक्र फूल चुनता, पांचजन्य शंख सम्पूर्ण दिशाओं में उनकी रक्षा करता, नन्दक खंग कुश लाया करता,

1. शिवपुराण में जाम्बवती द्वारा पुत्रप्राप्ति के लिये कृष्ण ने कुल एक वर्षतक ही तपस्या की थी(शि. पु. वा. सं. उ. ख., अ. 1) तथा महाभारत अनु. प. अ. 14 के अनुसार मात्र छः माह के लिये तपस्या की।

कौमोदकी गदा उनकी आवश्यक परिचर्या किया करती तथा शाङ्र्ग धनुष भृत्य के समान उनके सामने खड़ा रहता।(ह. पु. भविष्यपर्व 84/17-23)

तपस्या के दौरान पहले वे एक महीने में एक बार खाकर मन को संयम-नियम में रखते हुए तप करने लगे। फिर वे प्रत्येक दूसरे महीने पर एक बार अन्न ग्रहण करने लगे। इस तरह समय बढ़ाते हुए वे एक वर्ष में एक बार किसी एक ही अन्न का आहार करने लगे। इसी नियम से वह सारी तपस्या पूर्ण करके, जब बारहवाँ वर्ष पूर्ण होने में केवल एक मास की कमी रह गयी, तब वे अग्नि की स्थापना करके मन्त्रपाठपूर्वक हवन करने लगे। आरण्यक का पाठ और उत्तम प्रणव का जप करते हुए भगवान् शिव के ध्यान में मग्न हो गये।(ह. पु. भविष्यपर्व 84/25-28)

भगवान् शिव ने अपने गणों सहित श्रीकृष्ण को उक्त प्रकार से तपस्यारत देखा, तथा उन सबके साथ उनके सम्मुख प्रकट हो गये। शंकरजी को वहाँ उपस्थित देख श्रीकृष्णजी का चित्त हर्ष से खिल उठा और उन्होंने महादेवजी की स्तुति आरंभ कर दी। स्तुति की समाप्ति पर भगवान् शिव श्रीकृष्णजी का हाथ अपने हाथ में लेकर सभी देवताओं तथा मुनियों के सुनते हुए केशव से इस प्रकार बोले-जनार्दन! आप यह क्या कर रहे हैं? आपकी यह तपश्चर्या किसलिये हो रही है? प्रभो? आप की प्रार्थना क्या है? आप स्वयं नित्यस्वरूप भगवान् विष्णु हैं। जनार्दन! यदि आप की यह तपस्या पुत्र के लिये हो रही है तो मैंने पहले से ही आपको पुत्र दे रखा है। इतना कहने के बाद शिवजी ने कामदेव के दहन की कथा तथा उन्हें कृष्ण के पुत्ररूप में जन्म पाने के वरदान आदि की बातें बतायी।(ह. पु. भ. प. अध्याय 87 और 88/1-14)

यहाँपर सहज में ही एक प्रश्न उठता है कि भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं लोगों को वर देनेवाले तथा सर्वसमर्थ थे, फिर भी उन्होंने छोटी सी बात(पुत्रप्राप्ति) के लिये इतनी कठोर तपस्या की।

पुन: जिस पुत्र की प्राप्ति के लिये उन्होंने तपस्या की थी, वह उन्हें पहले से ही शिवजी द्वारा प्राप्त था। अत: यहाँपर श्रीकृष्ण की तपस्या के पीछे छिपे गूढ़ रहस्य का हमें स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। हरिवंश पुराण में भी तपस्या की रहस्यमयता संबन्धी प्रश्न उठाया गया है। वहाँपर कहा गया है कि "मानवरूपधारी जगदीश्वर श्रीहरि किस उद्देश्य से इच्छानुसार तपस्या करते थे, इसे हम नहीं जानते(सर्वसमर्थ ईश्वर के लिये पुत्र के उद्देश्य से तपस्या की कोई संगति नहीं है)। वास्तव में ईश्वर का संकल्प प्राणीमात्र के लिए दुर्ज्ञेय है-वे क्या सोचकर कौन-सा कार्य करते हैं, यह जानना सभी के लिये अत्यन्त कठिन है।"

किमुद्दिश्य जगन्नाथस्तपश्चरति मानव:।।
तं न विद्मो यथाकामं दुर्ज्ञेयेश्वरचिन्तना। (ह. पु. भविष्यपर्व 84/18-19)

उपरोक्त उदाहरण के अतिरिक्त भी हमें ग्रन्थों में अन्य उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँपर भगवान् शिव या पार्वतीतक को तपस्यारत दिखाया गया है। उदाहरणस्वरूप पार्वती को लें। शिवपुराण(वायवीय

संहिता, पूर्वखण्ड, अध्याय 17-24) में पार्वती को काली से गोरी बनने के लिये ब्रह्माजी से सहायता-प्राप्ति हेतु तपस्या करते हुए दिखाया गया है। भगवान् शिव ने एक बार परिहास में पार्वती के काले रूप की निन्दा की। इस निन्दा से प्रभावित हो उमा देवी गोरी बनने के लिये भगवान् शिव से तपस्या करने की अनुमति माँगने लगीं। तपस्या की बात को सुनकर पार्वती से शिव(लौकिकता का अनुसरण कर) बोले-कि यदि अपनी श्यामता को लेकर तम्हें इस तरह संताप हो रहा है तो इसके लिये तपस्या की क्या आवश्यकता है? तुम मेरी या अपनी इच्छा-मात्र से ही दूसरे वर्ण से युक्त हो जावोगी। इसपर देवी कहती हैं कि मैं आपसे अपने रंग का परिवर्तन नहीं चाहती। स्वयं भी इसे बदलने का संकल्प नहीं कर सकती। अब तो तपस्या द्वारा ब्रह्माजी की आराधना करके ही मैं गोरी होऊँगी।

कठोर तपस्या करते-करते जब बहुत समय बीत गया तब ब्रह्माजी देवी के पास गये और बोले देवि! इस तीव्र तपस्या के द्वारा आप यहाँ किस मनोरथ की सिद्धि चाहती हैं? तपस्या के सभी फलों की सिद्धि तो आपके ही अधीन है[1]। लगता है कि आपका यह सारा ही क्रिया-कलाप(तपस्यादि) आपका लीला-विलास है। इसके बाद देवी ने अपना मनोरथ बताया कि वे काली से गोरी बनना चाहती हैं। मनोरथ सुनने के पश्चात् पुनः ब्रह्माजी कहते हैं-देवि! इतने ही प्रयोजन के लिये आपने ऐसा कठोर तप क्यों किया? क्या इसके लिये आपकी इच्छामात्र ही पर्याप्त नहीं थी? अथवा यह आपकी लीला ही है। आपकी लीला भी लोकहित के लिये ही होती है।(शिवपु. वाय. सं. पू. अ. 25)

श्रीकृष्ण या माता पार्वती की तपस्या के पीछे क्या रहस्य हो सकता है? जैसा शिवपुराण में संकेत दिया गया है कि इसके पीछे लोक-कल्याण एवं लोकआदर्श की स्थापना महत्त्वपूर्ण कारण है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुख से कह रहे हैं कि-

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।। (गीता 3/22)

अर्थात्-हे अर्जुन! मुझे(इन) तीनों लोकों में न तो कुछ कर्त्तव्य है और न(कोई भी) प्राप्त करने योग्य(वस्तु) अप्राप्त है, (तो भी मैं)कर्म में बरतता(प्रवृत्त) होता हूँ।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। (गीता 3/21)

अर्थात्- श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष(भी) वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है(अर्थात् जो कर्म का रास्ता दिखा जाता है वह प्रमाण बन जाता है), समस्त मनुष्य समुदाय उसी के अनुसार बरतने(आचरण करने) लग जाता है।

कृष्णजी के उपरोक्त वचनों को ध्यान में रखा जाय तो महान् देवों एवं देवियों के आचरण का

1. शास्त्रों में देवी को सभी प्रकार की तपस्याओं की फलदात्री बताया गया है। उसी बात की याद ब्रह्माजी उमा को दिला रहे हैं।

कुछ-कुछ रहस्य समझा में आ जाता है। कृष्णजी द्वारा की गयी पुत्रप्राप्ति संबन्धी उपरोक्त तपस्या के पीछे एक लक्ष्य हो सकता है शिवपूजा के आर्दश को स्थापित करना। जिस तरह की कठोर तपस्या उन्होंने की तथा जितने लम्बे अरसेतक की, वह अपने आप में तपस्या का एक प्रामाणिक रूप है। बारह वर्ष की तपस्या का व्रत लेना कलियुग में एक आर्दश माना जा सकता है। पूजा की उन्होंने वैदिक रीति अपनायी, अत: शिव की आर्दश-पूजा का रूप वैदिक होना चाहिये न कि अन्य तामसिक या तान्त्रिक। वास्तव में पुत्र-प्राप्ति की इच्छा तो महज एक बहाना था, असली लक्ष्य तो लोक में भगवान् शिव एवं उनकी पूजा के महत्त्व तथा पूजा-संबंधी आदर्श(लोकहित के लिये) स्थापित करना था। अवतारी पुरुषों का प्रमुख लक्ष्य धर्म की स्थापना करना, दुष्टों का विनाश करना तथा साधुओं की रक्षा करना होता है, अत: श्रीकृष्णचन्द्र का भी लक्ष्य धर्म की स्थापना करना था। धर्म के आवश्यक तत्त्वों में तपस्या भी है जिसका आदर्श उन्होंने उपरोक्त तपस्या द्वारा निर्धारित किया है।

वाराणसी तीर्थ की महिमा सभी प्रमुख ग्रन्थों में पायी जाती है। इस पुराण में भी अविमुक्त-क्षेत्र के बारे में कहा गया है कि वहाँ भगवान् शिव तीन युगों में पार्वती के साथ निवास करते हैं, पर कलियुग में महादेवजी का वह नगर अदृश्य हो जाता है। उसके अदृश्य हो जानेपर वह वाराणसी नगरी फिर से बसती है।

यस्मिन् वसति वै देवः सर्वदेवनमस्कृतः।
युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः।।
अन्तर्धानं कलौ याति तत्पुरं हि महात्मनः।
अन्तर्हिते पुरे तस्मिन् पुरी सा वसते पुनः। (ह. पु. हरिवंशपर्व 29/67-68)

भगवान् शिव एवं श्रीकृष्ण

इस पुराण में भगवान् शिव एवं श्रीकृष्ण की तात्त्विक एकरूपता को बड़े ही सशक्त ढंग से उभारा गया है। हमें अनेक स्थलों पर इनकी एकता संबन्धी कथन प्राप्त होते हैं। इन स्थलों में से कुछ की चर्चा हम यहाँ करेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण शिवजी की स्तुति में उन्हें हरिहरस्वरूप(ह. पु. भविष्यपर्व 87/17), हरि रूपधारी(ह. पु. भविष्यपर्व 87/21) तथा कृष्णरूप में पार्थ के सारथि बनकर हाथ में चाबुक धारण करनेवाले(**अभिषु हस्ताय**) कहा है(ह. पु. भविष्यपर्व 87/25)। इसी प्रकार भगवान् शिव ने कृष्णजी को हरिरूपधारी हर(ह. पु. भविष्यपर्व 90/16) कहा है। एक अन्य स्थल पर(जिसका पहले भी उल्लेख हो चुका है) शिवजी कृष्ण-तत्त्व का उपदेश करते समय ऋषियों से कहते हैं कि मेरा चिन्तन करने के अनन्तर केशव का ज्ञान प्राप्त करो क्योंकि श्रीहरि के रूप में सदा मैं ही उपास्य माना गया हूँ(ह. पु. भविष्यपर्व 89/14)। कहने का अभिप्राय है कि भगवान् शिव ही हरि के रूप में

अवस्थित हैं।

श्रीकृष्ण का पुत्र-प्राप्ति के लिये कैलास जाने के प्रसंग में जन्मेजय वैशम्पायनजी से कहते हैं कि "कहा जाता है कि वे दोनों(शिवजी एवं श्रीकृष्णजी) महान् देवता एक ही हैं; किन्तु दो स्वरूपों में विभक्त हो गये हैं। उनका आत्मा(स्वरूप) एक ही है, तो भी कार्य-भेद से भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं। दोनों ही जगत् की उत्पत्ति के कारण हैं और दोनों ही सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले हैं। वे परस्पर समाविष्ट होकर जगत् के पालन-कर्म में स्थित रहते हैं।"

तौ हि देवौ महादेवावेकीभूतौ द्विधा कृतौ।
एकात्मानौ जगद्योनी सृष्टिसंहारकारकौ।।
परस्परसमावेशाज्जगतः पालने स्थितौ। (ह. पु. भवि. प. 73/5-6)

एक अन्य स्थल पर(ह. पु. भवि. प. 84/15) भगवान् कृष्ण को शिवस्वरूप विष्णु कहा गया है तथा शिव को विष्णुरूप से वामन अवतार लेनेवाले कहा है(ह. पु. वि. प. 72/29)। मार्कण्डेयजी ने हरि एवं हर की एकता को समझते हुए हरिहरात्मक स्तोत्र की रचना की है। उनके अनुसार विष्णुरूपधारी शिव और शिवरूपधारी विष्णु में कोई अन्तर नहीं है(ह. पु. वि. पर्व 125/29)। आदि, मध्य और अन्त से रहित जो यह अविनाशी अक्षर ब्रह्म है, उसका स्वरूप हरिहरात्मक है(ह. पु. वि. पर्व 125/30)।

शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे।
यथान्तरं न पश्यामि.....।।
अनादिमध्यनिधनमेतदक्षरमव्ययम्।
तदेव ते प्रवक्ष्यामि रूपं हरिहरात्मकम्।। (ह. पु. वि. प. 125/29-30)

आगे कहा गया है कि जो विष्णु हैं, वे ही रुद्र हैं और जो रुद्र हैं, वे ही ब्रह्मा हैं; इनका मूलस्वरूप तो एक ही है, परन्तु ये कार्यभेद से रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा तीन देवता कहलाते हैं। ये सब-के-सब लोकस्रष्टा, वरदायक, जगन्नाथ, स्वयंभू, अर्धनारीश्वर तथा तीव्र व्रत का आश्रय लेनेवाले हैं।

यो विष्णुः स तु वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः।।
वरदा लोककर्तारो लोकनाथाः स्वयम्भुवः।
अर्धनारीश्वरास्ते तु व्रतं तीव्रं समास्थिताः।। (ह. पु. वि. पर्व 125/31-32)

जैसे जल में डाला हुआ जल जलरूप हो जाता है, उसी प्रकार रुद्रदेव में प्रविष्ट हुए भगवान् विष्णु रुद्रमय हो जाते हैं। जैसे अग्नि में प्रविष्ट हुई अग्नि अग्निरूप ही होती है, उसी प्रकार विष्णु में

प्रविष्ट हुए रुद्रदेव विष्णुरूप ही होते हैं। रुद्रदेव को अग्निरूप तथा विष्णु को सोमरूप जानें। इसीलिये यह चराचर जगत् अग्नीषोमात्मक कहलाता है।(ह. पु. वि. पर्व 125/33-35)

ये हरि और हर ही समस्त चराचर जगत् के कर्त्ता, संहारक, शुभकारक तथा प्रभावशाली महेश्वर हैं। रुद्र के परमदेव विष्णु हैं और विष्णु के परमदेव शिव हैं। एक ही परमेश्वर दो रूपों में व्यक्त होकर सदा समस्त जगत् में विचरते रहते हैं। भगवान् शंकर के बिना विष्णु नहीं हैं और विष्णु के बिना शिव नहीं हैं। अत: वे दोनों रुद्र और विष्णु पूर्वकाल से ही एकत्व को प्राप्त हैं।

कर्तारौ चापहर्तारौ स्थावरस्य चरस्य तु।
जगतः शुभकर्तारौ प्रभविष्णू महेश्वरौ।।
रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः।
एक एव द्विधाभूतो लोके चरति नित्यशः।।
न विना शंकरं विष्णुर्न विना केशवं शिवः।
तस्मादेकत्वमायातौ रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा। (ह. पु. वि. पर्व 125/36, 41-42)

उपरोक्त सभी उद्धरणों में भगवान् शिव एवं विष्णु में तात्त्विक अभिन्नता बतायी गयी है। मूलरूप से वे एक ही ब्रह्म के रूप हैं तथा सृष्टि के कार्य संचालन हेतु अद्वैत ब्रह्म अपने को तीन प्रमुख देवों के रूप में बाँट रखा है।

मार्कण्डेयजी ने अपने हरिहरात्मक स्तोत्र में स्पष्टरूप से भगवान् शिव एवं विष्णु की अभिन्नता का प्रतिपादन किया है। उनके इस स्तोत्र(ह. पु. वि. पर्व 125/29-62) के पाठ से व्यक्ति निरोगता एवं बल को पाकर स्वर्ग एवं लक्ष्मी को भोगता है। पुत्रहीन को पुत्र, कुमारी को श्रेष्ठ पति तथा गर्भवती को उत्तम पुत्र प्राप्त होता है। जहाँ इस स्तोत्र का पाठ होता है वहाँ राक्षस, पिशाच तथा विनायक आदि का भय नहीं रहता।(ह. पु. वि. पर्व 125/63-64)

उपसंहार

इस पुराण में भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों का बड़े ही विस्तार से विवेचन मिलता है। निर्गुणरूप में वे गुणातीत, प्रणवरूप, अव्यक्त, अविनाशी, अप्रमेयस्वरूप, परमतत्त्व आदि-आदि हैं। सगुणरूप में वे ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप धारण कर संसार की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं। वे देवताओं के अधिपति, परमेश्वर, जगत्स्वरूप, कल्याणकारी, शीघ्र फल देनेवाले, रागादि दोषों को शान्त करनेवाले, आत्मस्वरूप, सम्पूर्ण भूत, भविष्य एवं वर्तमान की वस्तुएँ जिनका स्वरूप हैं, धनुर्वेद एवं अस्त्र विज्ञान के ज्ञाता, पाँच मुखवाले, त्रिशूल, चन्द्रमा, गजचर्म, सर्प, मुण्डमाला तथा पिनाक आदि को धारण करने वाले, पशुपति, योगेश्वर, भोग-मोक्षदाता, यज्ञस्वरूप, त्र्यम्बक, नीलकण्ठ, अर्धनारीश्वर, चराचर जगत् के स्वामी, अनादि तथा अनन्त आदि-आदि हैं। उन्हें ॐकार की अर्धमात्रा, जटाधारी तथा कृतकृत्य भी कहा गया है। सुदर्शन,

रुद्राक्ष की माला धारण करनेवाले, पिंगल एवं ताम्र वर्णवाले तथा डमरू आदि से युक्त कहा गया है।

भगवान् शिव सर्वदेवमय हैं इसलिये इनकी उपासना से अन्य सभी देव प्रसन्न हो जाते हैं। कृष्ण आदि देवों की पूजा भगवान् शिव की ही परोक्ष पूजा है। प्रत्यक्ष पूजा परोक्ष पूजा से अच्छी होती है। भगवान् शिव उत्यन्त उदार, कल्याणकारी, वर देने के लिए सदैव तत्पर, भक्तों को सुख-शान्ति पहुँचानेवाले, मोक्षदाता, पापहर्त्ता, राग एवं कामादि को शान्त करनेवाले, शीघ्र फल देनेवाले, श्रद्धा के अनुरूप ही फल देनेवाले, ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा भक्तों से प्रेम करनेवाले हैं। भगवान् शिव की इस प्रकार की अनेक विशेषतायें शिवभक्ति के आकर्षण को बढ़ा देती हैं। इनकी भक्ति से देव, असुर तथा मानव सभी लाभान्वित हुए हैं।

शिवभक्ति से बाणासुर ने गणेश्वर का पद तथा श्रीकृष्ण ने अजेयता तथा अवध्यता आदि का वर पाया। भगवान् श्रीकृष्ण ने पुत्र-प्राप्ति के बहाने बारह वर्षों की कठोर तपस्या का व्रत लेकर शिव-भक्ति का आदर्श लोक में स्थापित किया।

वाराणसी की महिमा बताते हुए कहा गया है कि यहाँपर भगवान् शंकर पार्वती सहित तीन युगों में वर्तमान रहते हैं पर कलियुग में उनका नगर(अविमुक्तक्षेत्र) अदृश्य हो जाता है।

इस पुराण में तीनों देवों(विशेषकर विष्णु एवं शिव) की एकता का प्रतिपादन सशक्त ढंग से हुआ है। यहाँ कहा गया है कि परमतत्त्व भगवान् शिव ही विष्णु तथा ब्रह्मा आदि रूपों में अपने को सृष्टि कार्य के लिये विभक्त करते हैं। अतः तात्त्विक दृष्टि से विष्णु एवं शिव आदि देवों में कोई अन्तर नहीं है, भेद केवल उनकी क्रियाओं में है।

इस पुराण में भगवान् शिव एवं उनके हरिहररूप संबंधी उपयोगी स्तोत्र भी हैं। इनमें से शिवजी का स्तोत्र भगवान् श्रीकृष्णकृत है जबकि हरिहरात्मक स्तोत्र मार्कण्डेयजीकृत है।

s s s s s s s s

संसार में बहुतेरे लोग ऐसे हैं, जो दूसरों को उपदेश दिया करते हैं; किन्तु जो स्वयं आचरण करता हो, ऐसा मनुष्य करोड़ों में कोई एक ही देखा जाता है।

बुद्धिं परेषां दास्यन्ति लोके बहुविधा जनाः।
स्वयमाचरते सोऽपि नरः कोटिषु दृश्यते।

(पद्ममहापु. उत्तरखण्ड 132/35)